༄༅། །རྒྱལ་སྲས་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་
ལག་ལེན་སོ་བདུན་མ་
བཞུགས་སོ།།
ग्यल-स्रस-थोगस-मेद
प्रणीत
सैंतीस हस्तग्राह्य अनुष्ठान
श्री दीपिका व्याख्या
विभूषित

༄༅། །རྒྱལ་སྲས་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་
ལག་ལེན་སོ་བདུན་མ་
བཞུགས་སོ།།

ग्यल-स्रस-थोग्स-मेद
प्रणीत
सैंतीस हस्तग्राह्य अनुष्ठान
श्री दीपिका व्याख्या
विभूषित

हिमालय - बौद्ध - संस्कृति - ग्रन्थमाला-७

ग्यल-स्त्रस-योग्स-मेद
प्रवीत
सैंतीस हस्त ग्राह्य अनुष्ठान

अनुवादक एंव सम्पादक
आचार्य सेम्पा दोर्जे नेगी

प्रकाशक
लामा छोस्फेल ज़ोदपा
अध्यक्ष
हिमालय बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा, दिल्ली।

बुद्धाब्दः २५४४ सन् २०००

प्रथम संस्करण	१९९०	१,०००	प्रतियां
द्वितीय संस्करण	१९९३	५,०००	प्रतियां
तृतीय संस्करण	१९९६	१०,०००	प्रतियां
चतुर्थ संस्करण	२०००	१०,०००	**प्रतियां**

Published by:
HIMALAYAN BUDDHIST CULTURAL ASSOCIATION
5, Ladakh Buddhist Vihar, Bela Road, Delhi-110054
Phone: 3965323

Printed at **Jayyed Press, 5228 Ballimaran, Delhi-110006**

དཔར་སྐྲུན་ཆེད་བརྗོད།

༄༅། །ལྷ་དང་བཅས་པའི་འགྲོ་བ་ཡོངས་ལ་ཕན་པ་དང་།
བདེ་སྐྱིད་ཀྱི་གཞི་རྩ་ནི། བདག་ཅག་གི་སྟོན་པ་ཐུགས་རྗེ་ཅན་གྱིས་
ཡང་དག་པར་བསྟན་པའི་བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི་བསྟན་པ་རིན་པོ་ཆེ་འདི་ཉིད་
ཡིན། དེ་སྲུང་སྐྱོབ་དང་ཡར་རྒྱས་ཞུ་རྒྱུ་ནི་རྒྱལ་སྲས་བྱང་ཆུབ་སེམས་
དཔའི་སྤྱོད་པ་རླབས་པོ་ཆེ་དང་མཐུན་ཞིང་། རང་རེའི་ཧི་མཱ་ལ་ཡའི་
ནང་པའི་ཆོས་རིག་འཛིན་སྐྱོང་ཚོགས་པའི་དམིགས་ཡུལ་ཡང་དེ་ཡིན།

དེ་ལྟ་བུའི་བསྟན་པ་རིན་པོ་ཆེ་སྲུང་སྐྱོབ་དང་། ཡར་རྒྱས་ངོ་
མ་ནི་ཆོས་དང་ཆོས་མིན་ཞེས་པའི་ཆོས་འདི་ལེགས་པོ་ཤེས་པར་
མཛད་ནས། དེའི་དོན་ལས་འབྲས་དང་། སེམས་པ་བཟང་པོ་གཞན་
ཕན་སོགས་ཉམས་སུ་བླངས་ན། སྲུང་སྐྱོབ་དང་དོན་གྱི་ཡར་རྒྱས་
ཀྱང་ཡིན་ལ། དེང་སང་འཛམ་གླིང་ཞི་བདེ་ཞེས་པའི་སྐད་གྲགས་ཅན་
ཡང་འདི་ལྟ་བུའི་ཆོས་སྲིད་ཟུང་འབྲེལ་ལ་བརྟེན་ནས་ངེས་པར་ཡོང་
ཐུབ་པ་ཡིན།

ཆོས་སྒྲུབ་པའམ་ཉམས་སུ་བླངས་པ་ལ་ཐོག་མར་ཚད་ལྡན་གྱི་བླ་མའི་
དྲུང་ནས་ཐོས་པའམ་ཉན་དགོས་པ་སོགས་ཤིན་ཏུ་གལ་ཆེ་བར་མཐོང་

ཀྱེ། རིས་མེད་སྐྱེས་ཆེན་དམ་པ་རྣམས་ནས་ཡུལ་ལུང་གང་སར་མི་
མང་གི་བློ་དོན་དང་འཚམས་པའི་གསུང་ཆོས་ཞུ་སྐབས་སུ། གློག་འཕྲིན་
བདེ་བའི་གསུང་རབ་མང་པོ་ཞིག་དཔར་སྐྲུན་ཞུ་མུས་བཞིན།

རྒྱལ་སྲས་ཐོགས་མེད་བཟང་པོས་མཛད་པའི་རྒྱལ་སྲས་ལག་
ལེན་སོ་བདུན་མ་འདི་ཉིད། ཁུ་ནུའི་མཁས་དབང་སེམས་དཔའ་རྡོ་རྗེ་
པགས་ནས་ཧིན་དི་ཐོག་སྒྲ་བསྒྱུར་མཛད་པ་འདི་ཡང་གུས་ནས་ཉེ་བའི་
ལོ་ཤས་སྔོན་སྐད་གཉིས་ཤན་སྦྱར་གྱི་ཚུལ་དུ་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་ཏེ་དཔེ་
དེབ་ཀྱི་ཚུལ་དུ་བཞུགས་པ་འདི་ཉིད་གཞིར་བཟུང་ཐོག

སྤྱི་ལོ་༡༩༩༨ ལོར་ བཱང་གཱལ་མངའ་ཁུངས་ས་ལུ་ག་ར་རུ།
ཀོང་ས་སྐྱབས་མགོན་ཆེན་པོ་མཆོག་ནས་དཔལ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་
དབང་ཆེན་དཀའ་དྲིན་བསྐྱངས་སྐབས་སུ། ཧེ་མཱ་ལ་ཡའི་ཆོས་རིགས་
འཛིན་སྐྱོང་ཚོགས་པ་ནས་དཔར་ཐེངས་གཉིས་པ་དང་གསུམ་པ་དཔར་
སྐྲུན་ཞུ་རྒྱུའི་གོ་སྐབས་བཟང་པོ་ཐོབ་པ་དང་།

ད་ལམ་སྤྱི་ཧི་དཀྱིལ་དགོན་པར་ ཀོང་ས་སྐྱབས་མགོན་ཆེན་པོ་
མཆོག་ནས་དཔལ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་དབང་ཆེན་སྩལ་སྐབས་དོན་

གཉེར་ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་པའི་མདུན་པས། སླར་ཡང་ཧིན་བོད་ཤན་
སྦྱར་གྱི་ཚུལ་དུ་དཔར་ཐེངས་བཞི་བ་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་པ་ལགས་ན།

འདིར་འབད་རྣམ་དཀར་གྱི་དགེ་བས། ༸གོང་ས་སྐྱབས་མགོན་
རྒྱལ་བ་ཡིད་བཞིན་ནོར་བུ་མཆོག་གི་སྐུ་ཚེ་ཞབས་པད་བརྟན་ཅིང་།
རླབས་ཆེན་མཛད་འཕྲིན་གྱིས་བོད་ལྗོངས་རང་དབང་གཙང་མའི་
དཔལ་ལ་ལོངས་སུ་སྤྱོད་པ་དང་། ལྷ་དང་བཅས་པའི་འགྲོ་བ་རྣམས་
རིང་མིན་རྣམ་མཁྱེན་རྒྱལ་བའི་གོ་འཕང་ལ་བགྲོད་པའི་རྒྱུར་འགྱུར་
བར་ཤོག་ཅིག ཅེས་བསྔོ་སྨོན་རྣམ་པར་དག་པའི་མཚམས་སྦྱོར་དང་
འབྲེལ། འདི་ལ་ཐོས་བསམ་མཛད་མཁན་རྣམས་ལའང་མཚམས་
འདྲི་ཀྱི་བཀྲ་ཤིས་བདེ་ལེགས་ཞུ།

ཕྱི་ལིར་སྤྱི་ལོ་༢༠༠༠ ལོར་དགེ་སློང་ཆོས་འཕེལ་བཟོད་པས་བྲིས།།

प्रकाशकीय

समस्त प्राणियों की भलाई एंव स्थाई शांति तथागत भगवान बुद्ध द्वारा निर्मित बुद्ध शासन में ही निहित है। इसका संरक्षण एवं संवर्धन करना ही बौद्धिसत्यों को हस्तग्राह्य है। हिमालय बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा का उद्देश्य भी यही है।

इस तरह के बुद्ध शासन के संरक्षण एंव संवर्धन धर्म एंव अधर्म में से धर्म को अच्छी तरह से जानकर कर्मफल, एवं प्राणिमात्र की भलाई की साधना करना ही बुद्ध धर्म का मूल संरक्षण एवं संवर्धन है। आज के युग में विश्व शांति भी इस धर्म के द्वारा संभव है।

धर्म का अनुसरण एवं अभ्यास के लिए प्रथम लक्षणों से युक्त गुरु द्वारा उपदेश पाने की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए संस्था द्वारा समस्थ बौद्ध सम्प्रदायों के महान विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों को विनयजनों के सुविधानुसार प्रकाशाधीन है।

सन् १९८४ में जब परम् पावन दलाई लामा जी ने जिस्पा लाहोल हिमाचल मे काल चक्र अभिषेक के अवसर पर हस्तग्राह्य अनुष्ठान का उपदेश देना स्वीकार किया तो हिमालयन बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा के अनुरोध पर आचार्य सेम्पा दोर्जे नेगी ने सरल हिन्दी भाषा में हस्तग्राह्य अनुष्ठान का अनुवाद करके इस पुस्तक को जन साधारण के लिए प्रथम संस्करण का प्रकाशन किया।

आगामी दिसम्बर १९९६ में सालुगाडा (पश्चिम बंगाल) में हिमालयन बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा के अनुरोध पर परम पावन दलाई लामा जी ने श्री काल चक्र अभिषेक करने की अनुकम्पा की है। उस अवसर पर इस पुस्तक पर प्रवचन प्रदान कर रहे हैं। उस समय लोगों को यह हिन्दी अनुवाद आसानी से उपलब्ध हो, इस उद्देश्य से **श्री छयेरिंग ताशी परिवार नेपाल निवासी** ने हिमालयन बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा के माध्यम से वर्तमान संस्करण को प्रकाशीत किया है।

इस पुनीत कार्य द्वारा जो भी पुण्य अर्जित हो, वे सभी परम पावन दलाई लामा जी के दीर्घायु तथा तिब्बत के स्वतन्त्रता के लिए परिकामना करते हैं। इससे सभी जगत् के प्राणियों को सर्वज्ञता प्राप्त हो ऐसी हमारी प्रार्थना है।

इस ग्रन्थ के हिन्दी तथा नेपाली भाषा के अनुवाद-कर्ताओं तथा इस कार्य के प्रकाशन में जिन लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूं। पाठकों को इससे लाभ मिलेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

देहली *लामा छोसफेल ज़ोदपा*

१५ नवम्बर १९९६

ན་མོ་ལོ་ཀེ་ཤྭ་རཱ་ཡ།

नमो लोकेश्वराय

མཆོད་པར་བརྗོད་པ།

གང་གིས་ཆོས་ཀུན་འགྲོ་འོང་མེད་གཟིགས་ཀྱང་། །
འགྲོ་བའི་དོན་ལ་གཅིག་ཏུ་བརྩོན་མཛད་པ། །
བླ་མ་མཆོག་དང་སྤྱན་རས་གཟིགས་མགོན་ལ། །
རྟག་ཏུ་སྒོ་གསུམ་གུས་པས་ཕྱག་འཚལ་ལོ། །༡

मङ्गलाचरण

जिन्होंने समस्त धर्मों के आगमन एवं निर्गमन की अभाव (=नि:स्वभावता) का साक्षात्कार कर लिया है, फिर भी गतियों (=जीवों) के हितार्थ (वे) एकाकी उद्यत रहते हैं, (उस) गुरुवर को, तथा (लोक) नाथ अवलोकितेश्वर (के चरणों) मे, मैं (काय, वाक् और मन) तीनों द्वारों से सदा सादर नमस्कार करता हूँ ।। १ ।।

རྩོམ་པར་དམ་བཅའ་བ།

ཕན་བདེའི་འབྱུང་གནས་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྣམས། །
དམ་ཆོས་བསྒྲུབས་ལས་བྱུང་སྟེ་དེ་ཡང་ནི། །
དེ་ཡི་ལག་ལེན་ཤེས་ལ་རག་ལས་པས། །
རྒྱལ་སྲས་རྣམས་ཀྱི་ལག་ལེན་བཤད་པར་བྱ། །༢

प्रतिज्ञा

सुख एवं अनुशंसा (=उपकारों) के स्रोतस्थान सम्बुद्धों का आविर्भाव सद्धर्म की साधना से ही होता है । वह भी उसे हस्तगत कराने वाले (अनुष्ठानों एवं उसके) ज्ञान की अपेक्षा से होता है ।

अतएव जिन पुत्रों के हस्तग्राह्य (अनुष्ठानों के सम्बन्ध में कुछ मुदे यहाँ मैं संक्षेप में) बताने जा रहा हूँ ।। २।।

དལ་འབྱོར་ལས་སྙིང་པོ་ལེན་དགོས་ཚུལ།

དལ་འབྱོར་གྲུ་ཆེན་རྙེད་དཀའ་ཐོབ་དུས་འདིར། །
བདག་གཞན་འཁོར་བའི་མཚོ་ལས་བསྒྲལ་བྱའི་ཕྱིར། །
ཉིན་དང་མཚན་དུ་གཡེལ་བ་མེད་པར་ནི། །
ཉན་སེམས་བསྒོམ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣

क्षण सम्पत्ति की उपादेयता

स्व और पर (दोनों के संसार सागर से उद्धार के हेतु दुर्लभ क्षणसम्पत्ति रूपी परम नाव प्राप्त है, तो इस अवसर में बिना (किसी) तंद्रिता (=आलस्य) के रात दिन सद्धर्म का) श्रवन, मनन एवं भावना करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनुष्ठान) है ।। ३।।

ཕ་ཡུལ་ལ་ཞེན་པ་སྤོང་ཚུལ།

གཉེན་གྱི་ཕྱོགས་ལ་འདོད་ཆགས་ཆུ་ལྟར་གཡོ། །
དགྲ་ཡི་ཕྱོགས་ལ་ཞེ་སྡང་མེ་ལྟར་འབར། །
བླང་དོར་བརྗེད་པའི་གཏི་མུག་མུན་ནག་ཅན། །
ཕ་ཡུལ་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༤

जन्मभूमि की आसक्ति त्याग

बन्धु (=बान्धवों) के प्रति जल (प्रवाह) के समान राग का प्रचलन, शत्रुओं के प्रति अग्नि की तरह प्रज्वलित क्रोध और (समस्त) हेय-उपदेयता को विस्मृत (करने वाले) मोहरूपी/अन्धकार से युक्त

(अपनी) जन्मभूमि का त्याग करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनुष्ठान) है ।।४।।

དབེན་པའི་ཕན་ཡོན།

ཡུལ་ངན་སྤངས་པས་ཉོན་མོངས་རིམ་གྱིས་འགྲིབ། །
རྣམ་གཡེང་མེད་པས་དགེ་སྦྱོར་ངང་གིས་འཕེལ། །
རིག་པ་དྭངས་བས་ཆོས་ལ་ངེས་ཤེས་སྐྱེ། །
དབེན་པ་བསྟེན་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༥

विवेक की अनुशंसा

दूषित स्थान को त्याग देने से क्रमशः क्लेश घट जाता है । (चित्त में) विक्षेप के न रहने से कुशल (कर्मों) से (मन का) योग स्वतः बढ़ जाता है । चित्त के प्रसन्न रहने या होने से धर्म में निश्चय का (=सन्तीरण) लाभ होता है । (अतः) विवेक का सेवन करना (=एकान्तवास) जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।।५।।

ཚེ་འདི་བློས་གཏོང་ཚུལ།

ཡུན་རིང་འགྲོགས་པའི་མཛའ་བཤེས་སོ་སོར་འབྲལ། །
འབད་པས་བསྒྲུབས་པའི་ནོར་རྫས་ཤུལ་དུ་ལུས། །
ལུས་ཀྱི་མགྲོན་ཁང་རྣམ་ཤེས་མགྲོན་པོས་བོར། །
ཚེ་འདི་བློས་བཏང་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༦

इह जीवन के प्रति आसक्ति का त्याग

(एक दिन) लम्बे समय के साथ संगत प्रिय-मित्रों से जुदा हो जाता है । यत्नपूर्वक अर्जित धन-द्रव्य पीछे छूट जाता है, मेहमान

(रूपी) विज्ञान, शरीर (रूपी) अतिथिशाला को छोड़ देता है । (ऐसी स्थिति को देखते हुए) ऐहिकता की बुद्धि को त्याग देना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ६।।

གྲོགས་ངན་སྤོང་དགོས་ཚུལ།

གང་དང་འགྲོགས་ན་དུག་གསུམ་འཕེལ་འགྱུར་ཞིང་། །
ཐོས་བསམ་བསྒོམ་པའི་བྱ་བ་ཉམས་འགྱུར་ལ། །
བྱམས་དང་སྙིང་རྗེ་མེད་པར་བསྒྱུར་བྱེད་པའི། །
གྲོགས་ངན་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༧

बुरे संगतों का त्याग

जिनकी संगति से (राग द्वेष एवं मोह) त्रिविध विष (रूपी दोषों) की अभिवृद्धि होती है, (सद्धर्म के) श्रवन, मनन एवं भावना कार्यों का ह्रास होता है, मैत्री एवं करुणा (जैसी भावना) अवरुद्ध हो जाती हैं, (ऐसे) दुष्ट-मित्रों का परित्याग करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ७।।

དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་བསྟེན་ཚུལ།

གང་ཞིག་བསྟེན་ན་ཉེས་པ་ཟད་འགྱུར་ཞིང་། །
ཡོན་ཏན་ཡར་ངོའི་ཟླ་ལྟར་འཕེལ་འགྱུར་བའི། །
བཤེས་གཉེན་དམ་པ་རང་གི་ལུས་པས་ཀྱང་། །
གཅེས་པར་འཛིན་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༨

कल्याण मित्र का सेवन

जिनके सेवन (संगति) करने पर क्रमशः दोषों का क्षय होने लगता है, शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान (सत्) गुणों की वृद्धि होने

लगती है, (उस तरह के) कल्याण मित्रों को अपने शरीर से भी अधिक प्रिय रूप में (=महत्व देकर) ग्रहण करना जिन-पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।।८।।

སྐྱབས་ཡང་དག།

རང་ཡང་འཁོར་བའི་བཙོན་རར་བཅིང་བ་ཡི། །
འཇིག་རྟེན་ལྷ་ཡིས་སུ་ཞིག་སྐྱོབ་པར་ནུས། །
དེ་ཕྱིར་གང་ལ་སྐྱབས་ན་མི་བསླུ་བའི། །
དཀོན་མཆོག་སྐྱབས་འགྲོ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༩

शरण गमन

स्वयं संसार के कारागार में फसे लौकिक देवताओं द्वारा किस का त्राण हो सकता है, (अर्थात वे अभय के लिए किसको शरण दे सकते हैं ?) अतः जिनके शरण में जाने पर (कभी) विसम्वाद (=धोखा) नहीं हो सकता, (उस) त्रिरत्न की शरण में जाना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।।९।।

སྡིག་པ་བཤགས་དགོས་ཚུལ།

ཤིན་ཏུ་བཟོད་དཀའི་ངན་སོང་སྡུག་བསྔལ་རྣམས། །
སྡིག་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུར་ཐུབ་པས་གསུངས། །
དེ་ཕྱིར་སྲོག་ལ་བབ་ཀྱང་སྡིག་པའི་ལས། །
ནམ་ཡང་མི་བྱེད་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༠

पाप देशना

अत्यन्त असह्य दुर्गतियों का दुःख पाप कर्मों का ही फल है, (ऐसा) मुनी ने कहा है । अतएव (अपना यह) प्राण छूट भी जाय, तो

भी पाप कर्मों को कभी न करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १०।।

ཐར་པ་དོན་དུ་གཉེར་དགོས་ཚུལ།

སྲིད་གསུམ་བདེ་བ་རྩྭའི་ཟིལ་པ་བཞིན། |
ཡུད་ཙམ་ཞིག་གིས་འཇིག་པའི་ཆོས་ཅན་ཡིན། |
ནམ་ཡང་མི་འགྱུར་ཐར་པའི་གོ་འཕང་མཆོག |
དོན་དུ་གཉེར་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༡

निश्रेयस की आवश्यकता

तीनों भवों (=कामलोक, रूपलोक और अरूपलोक) का सुख तृण के अग्रभाग में स्थित ओस (बिन्दु) के समान क्षणिक एवं विनाशशील है । (इसके विपरीत) कदापि विकृत न होनेवाले परम (श्रेष्ठ) मोक्षपद का अर्थी होना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ११।।

སྙིང་རྗེའི་རྩ་བ་ཅན་གྱི་སེམས་བསྐྱེད།

ཐོག་མེད་དུས་ནས་བདག་ལ་བརྩེ་བ་ཅན། |
མ་རྣམས་སྡུག་ན་རང་བདེས་ཅི་ཞིག་བྱས། |
དེ་ཕྱིར་མཐའ་ཡས་སེམས་ཅན་བསྒྲལ་བྱའི་ཕྱིར། |
བྱང་ཆུབ་སེམས་བསྐྱེད་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༢

करुणामूलक चित्तोत्पाद

अनादिकाल से हमारे प्रति वात्सल्य (एवं स्नेह) रखने वाली (सभी) माताएँ (=जीव) दुःखी है, तो स्वयं के सुख से हमें क्या करना (=क्या लाभ) है । अतएव अप्रमेय (दुःखार्त) सत्त्वों के त्राणहेतु

बोधिचित्त का उत्पाद करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १२।।

བདག་གཞན་བརྗེ་བའི་བློ་སྦྱོང་ཚུལ།

སྡུག་བསྔལ་མ་ལུས་བདག་བདེ་འདོད་ལས་བྱུང་། །
རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་གཞན་ཕན་སེམས་ལས་འཁྲུངས། །
དེ་ཕྱིར་བདག་བདེ་གཞན་གྱི་སྡུག་བསྔལ་དག །
ཡང་དག་བརྗེ་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༡

स्व-पर का विनियोग

निखिल (संसारिक) दु:खों का उद्भव आत्मा सुखेच्छा (रूपी तृष्ण) से होता है । सम्यक्सम्बुद्धत्व का प्रादुर्भाव परहित चिन्तन से होता है । ऐसी स्थिति में अपने सुखों का एवं 'पर' के दु:खों का सुविनियोग करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १३।।

མཐུན་མོང་གི་བསླབ་བྱ།

སུ་དག་འདོད་ཆེན་དབང་གིས་བདག་གི་ནོར། །
ཐམས་ཅད་འཕྲོག་གམ་འཕྲོག་ཏུ་འཇུག་ན་ཡང་། །
ལུས་དང་ལོངས་སྤྱོད་དུས་གསུམ་དགེ་བ་རྣམས། །
དེ་ལ་བསྔོ་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༢

बोधिसत्वों की सामान्य शिक्षा

अत्यधिक लोभवश कोई व्यक्ति हमारे सारे धन सम्पत्तियों का अपहरण कर लेता है या अपहरण कराता हो, तो भी त्रैकालिक पुण्यों के साथ शरीर तक (यानि अपने) समस्त भोग्य वस्तुओं को (उन

अपहरण कर्ताओं) के लिये परिणामित (समर्पित) करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १४।।

བདག་ལ་ཉེས་པ་ཅུང་ཟད་མེད་བཞིན་དུ། །
གང་དག་བདག་གི་མགོ་བོ་གཅོད་བྱེད་ནའང་། །
སྙིང་རྗེའི་དབང་གིས་དེ་ཡི་སྡིག་པ་རྣམས། །
བདག་ལ་ལེན་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༥

अपने में अल्पमात्र भी दोष न रहे, फिर भी कोई (व्यक्ति) हमारे सिर तक काटने के लिए तत्पर हो जाय, तो भी करुणावश उन लोगों के पापों को अपने ऊपर लेना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १५।।

འགའ་ཞིག་བདག་ལ་མི་སྙན་སྣ་ཚོགས་པ། །
སྟོང་གསུམ་ཁྱབ་པར་སྒྲོག་པར་བྱེད་ན་ཡང་། །
བྱམས་པའི་སེམས་ཀྱིས་སླར་ཡང་དེ་ཉིད་ཀྱི། །
ཡོན་ཏན་བརྗོད་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༦

कुछ लोग नाना प्रकार के अपशब्दों से त्रिसाहस्र (लोकधातु) पर्यान्त हमारे (दोषों का) ही संकीर्तन क्यों न करें फिर भी मैत्रीचित्त पूर्वक पुनः उनके गुणों का ही आख्यान करना ज़िन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १६।।

འགྲོ་མང་འདུས་པའི་དབུས་སུ་འགའ་ཞིག་གིས། །
མཚང་ནས་བྲུས་ཤིང་ཚིག་ངན་སྨྲ་ན་ཡང་། །
དེ་ལ་དགེ་བའི་བཤེས་ཀྱི་འདུ་ཤེས་ཀྱིས། །
གུས་པར་འདུད་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༧

अनेक जनसमुदाय के सम्मुख कोई व्यक्ति हमारे दोषों का अन्वेषण करे, (हमारे प्रति) अपशब्दों का व्यवहार करे, तो भी उसके प्रति कल्याण मित्र का भाव रखना विनम्रता से उनका आदर करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १७।।

བདག་གི་བུ་བཞིན་གཅེས་པར་བསྐྱངས་པའི་མིས། །
བདག་ལ་དགྲ་བཞིན་ལྟ་བ་བྱེད་ན་ཡང་། །
ནད་ཀྱིས་བཏབ་པའི་བུ་ལ་མ་བཞིན་དུ། །
ལྷག་པར་བརྩེས་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༨

(हमारे द्वारा) अपनी संतान के समान सस्नेह पाले हुए व्यक्ति यदि हमको (जानी) दुश्मन की तरह से भी देखता हो, तो भी रोग से ग्रस्त पुत्र के (प्रतिमा के प्यार के) समान, उनके प्रति अत्यधिक दयाभाव रखना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १८।।

རང་དང་མཉམ་པའམ་དམན་པའི་སྐྱེ་བོ་ཡིས། །
ང་རྒྱལ་དབང་གིས་བརྙས་ཐབས་བྱེད་ན་ཡང་། །
བླ་མ་བཞིན་དུ་གུས་པས་བདག་ཉིད་ཀྱི། །
སྤྱི་བོར་ལེན་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༡༩

अपने (से बड़े हो, या) समकक्ष या अन्य निम्न स्तर के लोगों द्वारा अहंकारवश अपमानित किए जाने पर भी अपने गुरु के समान सादर (उनके व्यवहारों को) शिरोधारण करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। १९।।

འཚོ་བས་འཕོངས་ཤིང་རྟག་ཏུ་མི་ཡིས་བརྙས། |
ཆབས་ཆེན་ནད་དང་གདོན་གྱིས་བཏབ་ཀྱང་སླར། |
འགྲོ་ཀུན་སྡིག་སྡུག་བདག་ལ་ལེན་བྱེད་ཅིང་། |
ཞུམ་པ་མེད་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༢༠

जीविका से दारिद्र हो जाए, लोगों द्वारा सदा अपमानित होता हो, या घोर विघ्नों एवं रोगों से ग्रस्त हो, तो भी समस्त गतियों (=जीवों) का पापों एवं दु:खों को (हृदय से) अपने ऊपर लेते हुए अविचलित (भाव से) रहना ज़िन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २० ।।

སྙན་པར་གྲགས་ཤིང་འགྲོ་མང་སྤྱི་བོས་བཏུད། |
རྣམ་ཐོས་བུ་ཡི་ནོར་འདྲ་ཐོབ་གྱུར་ཀྱང་། |
སྲིད་པའི་དཔལ་འབྱོར་སྙིང་པོ་མེད་གཟིགས་ནས། |
ཁེངས་པ་མེད་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༢༡

बहुजनों का नतमस्तक (सम्मान पाये) और सुयशस्वी हो जाए, कुवेर के समान घनाढ्य हो जाएँ तो भी सांसारिक सम्पदा–श्री की नि:सारता को देखते हुए घमण्ड न करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २१ ।

རང་གི་ཞེ་སྡང་དགྲ་བོ་མ་ཐུལ་ན། |
ཕྱི་རོལ་དགྲ་བོ་བཏུལ་ཞིང་འཕེལ་བར་འགྱུར། |
དེ་ཕྱིར་བྱམས་དང་སྙིང་རྗེའི་དམག་དཔུང་གིས། |
རང་རྒྱུད་འདུལ་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༢༢

अपने अन्दर के द्वेषरूपी शत्रु का यदि दमन न किया, तो बाह्यशत्रु तो दमन करने से और फैलते जाते हैं । अतएव मैत्री एवं करुणा रूपी सेना के द्वारा अपनी सन्तति (=अपने आन्तरिक शत्रु क्लेश युक्त मन) का ही दमन करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है । २२ ।।

འདོད་ཡོན་ལ་ཞེན་པ་སྤོང་ཚུལ།

འདོད་པའི་ཡོན་ཏན་ལན་ཚྭའི་ཆུ་དང་འདྲ། །
ཇི་ཙམ་སྤྱད་ཀྱང་སྲེད་པ་འཕེལ་བར་འགྱུར། །
གང་ལ་ཞེན་ཆགས་སྐྱེ་བའི་དངོས་པོ་རྣམས། །
འཕྲལ་ལ་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༢༣

कामगुणों के प्रति आसक्ति का त्याग

कामगुणों (का सेवन) नामक के पानी (पीने) के समान होता है । जितना सेवन करेंगे, (उतनी) तृष्णा फैलती ही जाती है । अतः जिन वस्तुओं (=विषयों) से कामासिक्त का उदय होता है; उनका तत्काल परित्याग करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २३ ।।

ཚུལ་མིན་ཡིད་བྱེད་སྤོང་ཚུལ།

ཇི་ལྟར་སྣང་བ་འདི་དག་རང་གི་སེམས། །
སེམས་ཉིད་གདོད་ནས་སྤྲོས་པའི་མཐའ་དང་བྲལ། །
དེ་ཉིད་ཤེས་ནས་གཟུང་འཛིན་མཚན་མ་རྣམས། །
ཡིད་ལ་མི་བྱེད་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༢༤

अयोनिशो मनसिकार का त्याग

प्रतीयमान ये सभी (विषयधर्म) अपने चित्त (की प्रतीति मात्र) ही हुआ करती हैं । चित्त आदित: (स्वत:) प्रपञ्चों की कोटियों से मुक्त है । इस (तथ्य) को देखते हुे सभी ग्राह्य-ग्राहक निमित्तों का (अयोनिशो) मनसिकार न करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २४ ।।

ཆགས་ཡུལ་ལ་མངོན་ཞེན་སྤོང་ཚུལ།

ཡིད་དུ་འོང་བའི་ཡུལ་དང་འཕྲད་པའི་ཚེ། །
དབྱར་གྱི་དུས་ཀྱི་འཇའ་ཚོན་ཇི་བཞིན་དུ། །
མཛེས་པར་སྣང་ཡང་བདེན་པར་མི་ལྟ་ཞིང་། །
ཞེན་ཆགས་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༢༥

रागनिमित्तों के प्रति अभिनिवेश का त्याग

मनोज्ञ (=मनोरम) विषयों के सन्निकर्ष (=निकटता) से सुन्दरतम प्रतीतियाँ होती हैं; पर वर्षाकालीन इंद्रधनुष के समान (उसमें) सत्यता नहीं देखी जाती है । अत: (उन विषयों के प्रति) कामासक्ति का त्याग करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २५ ।।

འཁྲུལ་སྣང་བདེན་མེད་དུ་ངེས་པས་སྡུག་བསྔལ་ལ་ཇི་མི་སྙམ་ཚུལ།

སྡུག་བསྔལ་སྣ་ཚོགས་རྨི་ལམ་བུ་ཤི་ལྟར། །
འཁྲུལ་སྣང་བདེན་པར་བཟུང་བས་ཨ་ཐང་ཆད། །
དེ་ཕྱིར་མི་མཐུན་རྐྱེན་དང་འཕྲད་པའི་ཚེ། །
འཁྲུལ་པར་ལྟ་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༢༦

भ्रान्त प्रतीतियों की निःसारता

ये नाना प्रकार के (सांसारिक) दुःख, स्वप्न में पुत्र की मृत्यु (से होने वाले दुःख) के ही समान (मात्र भ्रान्ति) है । (इन) भ्रान्त (विषयों) को सत्यतः ग्रहण करते हुए (लोग) परेशान रहते हैं । अतएव प्रतिकूल प्रत्ययों के सम्पर्क में आते समय (उनकी) भ्रान्तता का दर्शन करना (या उसकी यथार्थता को पहचानना) जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २६।।

སྦྱིན་པའི་ཕར་ཕྱིན།

བྱང་ཆུབ་འདོད་པས་ལུས་ཀྱང་བཏང་དགོས་ན། |
ཕྱི་རོལ་དངོས་པོ་རྣམ་ལྟ་སྨོས་ཅི་དགོས། |
དེ་ཕྱིར་ལན་དང་རྣམ་སྨིན་མི་རེ་བའི། |
སྦྱིན་པ་གཏོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༢༧

दानपारमिता

बोधि के इच्छुक (लोगों) को (अपने) शरीर तक का उत्सर्ग करना पड़ता है; ऐसी स्थिति में बाह्य वस्तुओं के त्याग का तो कहना ही क्या है ! अतएव प्रत्युपकार एवं (सुख) विपाक [फल] की बिना प्रत्याशा के दान देना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २७।।

ཚུལ་ཁྲིམས།

ཚུལ་ཁྲིམས་མེད་པར་རང་དོན་མི་འགྲུབ་ན། |
གཞན་དོན་འགྲུབ་པར་འདོད་པ་གད་མོའི་གནས། |
དེ་ཕྱིར་སྲིད་པའི་འདུན་པ་མེད་པ་ཡི། |
ཚུལ་ཁྲིམས་བསྲུངས་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༢༨

शील

शील के अभाव में स्वार्थ [=आकांक्षित सामान्य अर्थ, मोक्ष आदि] की सिद्धि भी नहीं होती है । [ऐसी स्थिति में] परार्थ साधने की आशा रखना [बोधिसत्त्वों के लिये अत्यन्त] हास्यास्पद् हो जाता है । अतएव भव-छन्द से विमुक्त शील का पालन करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य [अनु०] है ।। २८।।

བཟོད་པ།

དགེ་བའི་ལོངས་སྤྱོད་འདོད་པའི་རྒྱལ་སྲས་ལ། |
གནོད་བྱེད་ཐམས་ཅད་རིན་ཆེན་གཏེར་དང་མཚུངས། |
དེ་ཕྱིར་ཀུན་ལ་ཞེ་འགྲས་མེད་པ་ཡི། |
བཟོད་པ་སྒོམ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༣༩

क्षान्ति

[विशाल] कुशल सम्पत्ति के अर्थि जिन पुत्रों के लिए सभी प्रकार के [बाधा एवं] बाधक [विघ्न धर्म] रत्ननिधि के समान [बोधि के उपकारक] होते हैं, इसलिये सभी [प्रतिकूल प्रत्ययों] के प्रति बिना वैरभाव के क्षान्ति की भावना करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। २९ ।।

བརྩོན་འགྲུས།

རང་དོན་འབའ་ཞིག་བསྒྲུབ་པའི་ཉན་རང་ཡང་། |
མགོ་ལ་མེ་ཤོར་བཟློག་ལྟར་བརྩོན་མཐོང་ན། |
འགྲོ་ཀུན་དོན་དུ་ཡོན་ཏན་འབྱུང་གནས་ཀྱི། |
བརྩོན་འགྲུས་རྩོམ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༣༠

वीर्य

स्वार्थ [अपने निर्वाण] मात्र की आशा रखने वाले श्रावक एवं प्रत्येकबुद्ध भी सिर में आग लगने पर [जैसे] प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उसी प्रकार उद्यम से युक्त देखे जाते हैं, फिर जीवमात्र के हित अर्थ (साधक, सद्) गुणों का आकार [सम्बोधि के लिये वैसा ही] वीर्य आरम्भ करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३० ।।

བསམ་གཏན།

ཞི་གནས་རབ་ཏུ་ལྡན་པའི་ལྷག་མཐོང་གིས། །
ཉོན་མོངས་རྣམ་པར་འཇོམས་པར་ཤེས་བྱས་ནས། །
གཟུགས་མེད་བཞི་ལས་ཡང་དག་འདས་པ་ཡི། །
བསམ་གཏན་སྒོམ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣༢

ध्यान

शमथ से सम्प्रयुक्त विपश्यना के द्वारा ही क्लेशों का प्रहाण होता है, [इसी को] ध्यान में रखकर चार [रूपी और] अरूपी [ध्यानों] से अतीत-ध्यान की भावना करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३१ ।।

ཤེས་རབ།

ཤེས་རབ་མེད་ན་ཕ་རོལ་ཕྱིན་ལྔ་ཡིས། །
རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་མི་ནུས་པས། །
ཐབས་དང་ལྡན་ཞིང་འཁོར་གསུམ་མི་རྟོག་པའི། །
ཤེས་རབ་སྒོམ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣༣

प्रज्ञा

प्रज्ञा के बिना अन्य पाँच पारमिताओं से बोधि की प्राप्ति नहीं होती । अतएव उपाय [भूत करुणा] से युक्त त्रिकोटिक कल्पनाओं से रहित प्रज्ञा की भावना करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३२।।

རང་གི་འཁྲུལ་པ་ལ་བརྟག་དགོས་ཚུལ།

རང་གི་འཁྲུལ་པ་རང་གིས་མ་བརྟགས་ན། །
ཆོས་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་ཆོས་མིན་བྱེད་སྲིད་པས། །
དེ་ཕྱིར་རྒྱུན་དུ་རང་གི་འཁྲུལ་པ་ལ། །
བརྟགས་ནས་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣༣

आत्मनिरीक्षण

अपनी भ्रान्त प्रवृत्तियों की परीक्षा स्वयं न की जाय, तो धर्म के वेश में अधर्म का कार्य होने की (बहुत) सम्भावना रहती है । अतएव सदा अपनी भ्रान्तवृत्तियों का परीक्षण एवं (उसका) प्रहाण करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३३।।

གཞན་གྱི་ཉེས་པ་མི་སྨྲོད་པ།

ཉོན་མོངས་དབང་གིས་རྒྱལ་སྲས་གཞན་དག་གི །
ཉེས་པ་སྨྲོད་ན་བདག་ཉིད་ཉམས་འགྱུར་བས། །
ཐེག་པ་ཆེ་ལ་ཞུགས་པའི་གང་ཟག་གི །
ཉེས་པ་མི་སྨྲ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣༤

दूसरों के दोषान्वेषण न करना

क्लेश वश इतरजिन पुत्रों के दोषों की उद्भावना करने से अपनी ही हानि होती है । अतएव महायान में प्रविष्ठ पुद्गलों (=बोधिसत्वों) के दोषों का उद्भावना न करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३४।।

བརྗོད་བཀུར་ལ་ཞེན་པ་སྤོང་བ།

ཉེད་བཀུར་དབང་གིས་ཕན་ཚུན་རྩོད་འགྱུར་ཞིང་། །
ཐོས་བསམ་སྒོམ་པའི་བྱ་བ་ཉམས་འགྱུར་བས། །
མཛའ་བཤེས་ཁྱིམ་དང་སྦྱིན་བདག་ཁྱིམ་རྣམས་ལ། །
ཆགས་པ་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །३५

लाभसत्कार के प्रति आसक्ति का त्याग

लाभ-सत्कार के कारण परस्पर विवाद (का जन्म) होता है, (जिससे) श्रवन, मनन एवं भावना सम्बन्धी (शुभ) कार्यों की हानि होती है । अतः दायकों एवं मित्रों के घर के प्रति आसक्ति त्यागना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३५।।

ཚིག་རྩུབ་སྤོང་བ།

རྩུབ་མོའི་ཚིག་གིས་གཞན་སེམས་འཁྲུག་འགྱུར་ཞིང་། །
རྒྱལ་བའི་སྲས་ཀྱི་སྤྱོད་ཚུལ་ཉམས་འགྱུར་བས། །
དེ་ཕྱིར་གཞན་གྱི་ཡིད་དུ་མི་འོང་བའི། །
ཚིག་རྩུབ་སྤོང་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །३६

पारुष्यवचन का त्याग

पारुष्य-वचन (=कटुवचन) से दूसरों का मन विक्षुप्त हो जाता है, (स्वयं) जिन पुत्रों के शील एवं चरित्र से च्युत हो जाता है । अतएव लोगों के प्रति अमनोज्ञ एवं कटु-वचन को त्यागना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३६ ।।

ཉོན་མོངས་ལ་འབུར་འཇོམ་བྱེད་ཚུལ།

ཉོན་མོངས་གོམས་ན་མཉེན་པོས་ཟློག་དཀའ་བས། |
དྲན་ཤེས་སྐྱེས་བུས་མཉེན་པོའི་མཚོན་གཟུང་ནས། |
ཆགས་སོགས་ཉོན་མོངས་དང་པོ་སྐྱེས་མ་ཐག |
འབུར་འཇོམས་བྱེད་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༣༧

क्लेशों का उभरते ही प्रहाण

क्लेशों के (अत्यधिक) अभ्यास होने पर प्रतिपक्षों द्वारा (उनका) प्रहाण करना (बहुत) दुष्कर हो जाता है । अतः स्मृति एवं सम्प्रजन्य (रूपी वीर) पुरुषों को (क्लेशों के) प्रतिपक्षरूपी शस्त्र ग्रहण कराकर रागादि क्लेशों को प्रथमतया उभरते ही (=उत्पन्न होते ही) प्रहीन कर देना, जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३७ ।।

སྙིང་དོན།

མདོར་ན་གང་དུ་སྤྱོད་ལམ་ཅི་བྱེད་ཀྱང་། |
རང་གི་སེམས་ཀྱི་གནས་སྐབས་ཅི་འདྲ་ཞེས། |
རྒྱུན་དུ་དྲན་དང་ཤེས་བཞིན་ལྡན་པ་ཡིས། |
གཞན་དོན་སྒྲུབ་པ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། |༣༨

उपसंहार

संक्षेप में जहाँ जो भी चरिका करें, अपने चित्त की अवस्था कैसी है ? इसका स्मरण रखते हुए सम्प्रजन्य से युक्त होकर सदा परार्थ की ही साधना करना जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३८।।

བསྔོ་བ།

དེ་ལྟར་བརྩོན་པས་བསྒྲུབས་པའི་དགེ་བ་རྣམས། །
མཐའ་ཡས་འགྲོ་བའི་སྡུག་བསྔལ་བསལ་བའི་ཕྱིར། །
འཁོར་གསུམ་རྣམ་པར་དག་པའི་ཤེས་རབ་ཀྱིས། །
བྱང་ཆུབ་བསྔོ་བ་རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་ཡིན། །༣༩

परिणामना

इस प्रकार उद्यमपूर्वक साधित सभी पुण्यों को त्रिकोटि परिशुद्ध प्रज्ञा के द्वारा अनन्त गतियों (=जीवमात्र) के दुःख निवारणार्थ तथा सम्बोधि (के हेतु के रूप) में परिणामित करना, जिन पुत्रों का हस्तग्राह्य (अनु०) है ।। ३९।।

གཞུང་གང་གི་དོན་དུ་བརྩམས་པ།

མདོ་རྒྱུད་བསྟན་བཅོས་རྣམས་ལས་གསུངས་པའི་དོན། །
དམ་པ་རྣམས་ཀྱི་གསུང་གི་རྗེས་འབྲངས་ནས། །
རྒྱལ་སྲས་རྣམས་ཀྱི་ལག་ལེན་སུམ་ཅུ་བདུན། །
རྒྱལ་སྲས་ལམ་ལ་སློབ་འདོད་དོན་དུ་བཀོད། །༤༠

रचना का उद्देश्य

सन्तों (=गुरुजनों) के वचनों का अनुसरण करते हुए, सूत्रों, तन्त्रों एवं शास्त्रों में उक्त विषयों [को लेकर] जिन पुत्रों के सैंतीस हस्तग्राह्य (=अनुष्ठानों को यहाँ ग्रन्थ) के रूप में प्रयुक्त किया गया है, (यह) जिन पुत्रों के मार्ग के शिक्षार्थियों के लिए (संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र) है ।। ४० ।।

བློ་གྲོས་དམན་ཞིང་སྦྱངས་པ་ཆུང་བའི་ཕྱིར། །
མཁས་པ་དགྱེས་པའི་སྡེབ་སྦྱོར་མ་མཆིས་ཏེ། །
མདོ་དང་དམ་པའི་གསུང་ལ་བརྟེན་པའི་ཕྱིར། །
རྒྱལ་སྲས་ལག་ལེན་འཁྲུལ་མེད་ལགས་པར་སེམས། །༤༡

मृदु मति एवं अल्प अभ्यास के कारण (मेरी इस रचना में) यद्यपि पण्डित (जनों) को आह्लादित करने वाली (छन्दादि) संग्रथन कारिता तो नहीं है । (तथापि) सूत्रों के (=बुद्धवचनों) एवं सन्तों के (=गुरुओं के) वचनों पर आधारित होने से (मैं इन्हें) जिन पुत्रों का अविपरीत हस्तग्राह्य (अनुष्ठान) ही समझता हूँ ।। ४१ ।।

ཉེས་ཆ་བཤགས་པ།

འོན་ཀྱང་རྒྱལ་སྲས་སྤྱོད་པ་རླབས་ཆེན་རྣམས། །
བློ་དམན་བདག་འདྲས་གཏིང་དཔག་དཀའ་བའི་ཕྱིར། །
འགལ་དང་མ་འབྲེལ་ལ་སོགས་ཉེས་པའི་ཚོགས། །
དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་བཟོད་པར་མཛད་དུ་གསོལ། །༤༢

सम्भावित दोष का प्रायश्चित

तथापि जिन पुत्रों की चरिकाओं की विशाल थाह पाना मेरे जैसे अल्पमति के लिए (अत्यन्त) दुष्कर है, अतः (इस रचना में शास्त्र) विरुद्ध एवं असम्बद्धादि दोष (बहुत सम्भव) हैं । (उन दोष) समूह के लिए सन्त-जनों से (मैं) क्षमा प्रार्थी हूँ ।। ४२।।

བརྩམས་པའི་དགེ་བསྔོ།

འདི་ལས་བྱུང་བའི་དགེ་བས་འགྲོ་བ་ཀུན། |
དོན་དམ་ཀུན་རྫོབ་བྱང་ཆུབ་སེམས་མཆོག་གིས། |
སྲིད་དང་ཞི་བའི་མཐའ་ལ་མི་གནས་པའི། |
སྤྱན་རས་གཟིགས་མགོན་དེ་དང་མཚུངས་པར་ཤོག |༤༣

ग्रन्थकार की परिणामना

इस (कार्य के द्वारा) अर्जित पुण्य से सभी गतियों (=जीवमात्र की सन्तति) में परमार्थ एवं सम्वृत्ति (ये दो) परमबोधिचित्तों (का उत्पाद हो, जिस) ये (इन सबों को) 'भवान्त' एवं 'शमान्त' में अप्रतिष्ठित (लोक) नाथ अवलोकितेश्वर के समान (पद प्राप्त) हों ।। ४३।।

ཅེས་པ་འདི་ཡང་རང་གཞན་ལ་ཕན་པའི་དོན་དུ་ལུང་དང་རིགས་པ་སྨྲ་བའི་བཙུན་པ་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་དངུལ་ཆུའི་རིན་ཆེན་ཕུག་ཏུ་སྦྱར་བའོ།། ||

इस ग्रन्थ की रचना युक्ति-आगमवादी श्रमण असङ्ग ने स्व एवं पर के हितार्थ—'द्ङुल्-छु-रिन्-छेन्-फुग्' नामक स्थान में की है ।।

।। शुभमस्तु सर्वजगतम् ।।

ལམ་གཙོ་རྣམ་གསུམ།

प्रधान त्रिविधमार्ग

༄༅། །རྗེ་བཙུན་བླ་མ་རྣམས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།།

भट्टारक गुरुवरों को (मैं सुमति कीर्ति) प्रणाम करता हूँ ।

རྩོམ་པར་དམ་བཅའ་བ།

རྒྱལ་བའི་གསུང་རབ་ཀུན་གྱི་སྙིང་པོའི་དོན། །
རྒྱལ་སྲས་དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་བསྔགས་པའི་ལམ། །
སྐལ་ལྡན་ཐར་འདོད་རྣམས་ཀྱི་འཇུག་ངོགས་དེ། །
ཇི་ལྟར་ནུས་བཞིན་བདག་གིས་བཤད་པར་བྱ། །༡

प्रतिज्ञा

(जो) मार्ग समस्त जिन प्रवचनों के हृदयगत विषय है; जिनपुत्रों द्वारा अनुशंसित हैं, सौभाग्यशाली मुमुक्षुओं का तीर्थस्थान[१] (प्रवेश स्थान) है, उसे मैं यथा शक्ति प्रतिपादन करूँगा ।। १ ।।

ཉན་པར་སྐུལ་བ།

གང་དག་སྲིད་པའི་སྡེ་ལ་མ་ཆགས་ཤིང་། །
དལ་འབྱོར་དོན་ཡོད་བྱ་ཕྱིར་བརྩོན་པ་ཡིས། །

---

१ यहाँ འཇུག་ངོགས་ द्वार के अर्थ में नहीं है, अपितु 'तीर्थ' या 'घाट' या रास्ते के अर्थ में है, जहाँ से नदी या समुद्र में नाव या जहाज़ आदि का अवतारण होता है, जैसे—

(क) विषमोऽपि विगाह्यते नमः कृततीर्थः षयसामित्राशया–किराताजुनीय २:३ ।

(ख) तीर्थ सर्वविद्यावताराणाम् । कादम्बरी ४४–३ ।

རྒྱལ་བ་དགྱེས་པའི་ལམ་ལ་ཡིད་རྟོན་པའི། །
སྐལ་ལྡན་དེ་དག་དང་བའི་ཡིད་ཀྱིས་ཉོན། །༢

श्रवणार्थ प्रेरणा

(जो) भव सुख (अर्थात सांसारिक सुखों) से निर्लिप्त; क्षणसम्पत्ति को कृतार्थ करने के लिए उद्यत और जिन प्रिय मार्ग के प्रति विश्वास रखने वाले भाग्यवान् हो, वे लोग (इसे) प्रसंन्न मन से सुनें ।। २ ।।

ཐུན་མོང་བའི་ལམ།

ངེས་འབྱུང་།

རྣམ་དག་ངེས་འབྱུང་མེད་པར་སྲིད་མཚོ་ཡི། །
བདེ་འབྲས་དོན་གཉེར་ཞི་བའི་ཐབས་མེད་ལ། །
སྲིད་ལ་བརྐམ་པ་ཡིས་ཀྱང་ལུས་ཅན་རྣམས། །
ཀུན་ནས་འཆིང་ཕྱིར་ཐོག་མར་ངེས་འབྱུང་བཙལ། །༣

सामान्यमार्ग

निर्याणचित्त

बिना विशुद्ध निर्याणचित्त के (अर्थात्) भवसरोवर का फल-भूत सुखापेक्षी (लोगों) की शान्ति का कोई उपाय नहीं है । भवासक्ति से ही तो देही (जीव संसार में) सम्प्रतिबद्ध होते हैं । अतः (मुमुक्षुओं को) निर्याण (चित्त) का पर्येषण (=खोज) करना ही चाहिए ।। ३ ।।

དལ་འབྱོར་རྙེད་དཀའ་ཚེ་ལ་ལོང་མེད་པ། །
ཡིད་ལ་གོམས་པས་ཚེ་འདིའི་སྣང་ཞེན་ལྡོག །

ལས་འབྲས་མི་སླུ་འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ་རྣམས། ।
ཡང་ཡང་བསམ་ན་ཕྱི་མའི་སྣང་ཞེན་ལྡོག །༤

क्षणसम्पत्ति की दुर्लभता एवं आयु की अनिश्चितता की भावना करने से ऐहिकता क़ा अभिनिवेश समाप्त हो जाता है । कर्म-फल की अविसंवादकता (अर्थात् कर्मफल की सापेक्षता एवं अत्यन्त प्रतिबद्धता) और सांसारिक दुःखों के पुनः-पुनः चिन्तन करने से साम्परायिक (अर्थात् पारलौकिक) अभिनिवेश (भी) समाप्त हो जाता है ।।४।।

དེ་ལྟར་གོམས་པས་འཁོར་བའི་ཕུན་ཚོགས་ལ། ।
ཡིད་སྨོན་སྐད་ཅིག་ཙམ་ཡང་མི་སྐྱེ་ཞིང་། ।
ཉིན་མཚན་ཀུན་ཏུ་ཐར་པ་དོན་གཉེར་བློ། ।
བྱུང་ན་དེ་ཚེ་ངེས་འབྱུང་སྐྱེས་པ་ལགས། ।༥

इस प्रकार अभ्यास करने पर, सांसारिक (सुख) सम्पदाओं के प्रति क्षणमात्र के लिए भी मन प्रणिहित (=मन में चाह) नहीं होता तथा अहोरात्र (=रात-दिन) मोक्षार्थिनी बुद्धि (=मुक्त होने की इच्छा) जब निरन्तर) होने लगती है, तब (साधक को समझना चाहिए कि अब हमारी सन्तति में) निर्याण चित्त उत्पन्न हो गया है ।।५।।

ཐེག་ཆེན་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ལམ།

སྙིང་རྗེའི་རྩ་བ་ཅན་གྱི་སེམས་བསྐྱེད།

ངེས་འབྱུང་དེ་ཡང་རྣམ་དག་སེམས་བསྐྱེད་ཀྱིས། ।
ཟིན་པ་མེད་ན་བླ་མེད་བྱང་ཆུབ་ཀྱི། །
ཕུན་ཚོགས་བདེ་བའི་རྒྱུ་རུ་མི་འགྱུར་བས། ।
བློ་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་མཆོག་བསྐྱེད། ।༦

महायानमार्ग

करुणा मूलक चित्तोत्पाद—

वह-निर्याण चित्त भी विशुद्ध चित्तोत्पाद के द्वारा परिगृहीत न हो, तो अनुत्तर बोधि के सुख-सम्पद का हेतु (=पुण्य सम्भार) नहीं बन पाता है । अतः बुद्धिमान लोगों को परम चित्तोत्पाद (=बोधिचित्त का उत्पाद) करना चाहिए ।। ६ ।।

ཤུགས་དྲག་ཆུ་བོ་བཞི་ཡི་རྒྱུན་གྱིས་ཁྱེར། །
བཟློག་དཀའ་ལས་ཀྱི་འཆིང་བ་དམ་པོས་བསྡམས། །
བདག་འཛིན་ལྕགས་ཀྱི་དྲྭ་བའི་སྦུབས་སུ་ཚུད། །
མ་རིག་མུན་པའི་སྨག་ཆེན་ཀུན་ནས་འཐིབས། །༧

तीव्रवेगवान् चार (तरह की) जलधाराओं (=बाढ़, औघ[१]) से प्रवाहमान, (अत्यन्त) दुर्निवार्य कर्मबन्धनों से सुप्रतिबद्ध, आत्मदृष्टि (=सत्काय दृष्टि) के लोह पिंजड़े में पतित, अविद्या रूपी महती घनान्धकार से आवृत्त है (यह संसार) ।। ७ ।।

མུ་མེད་སྲིད་པར་སྐྱེ་ཞིང་སྐྱེ་བ་རུ། །
སྡུག་བསྔལ་གསུམ་གྱིས་རྒྱུན་ཆད་མེད་པར་མནར། །
གནས་སྐབས་དེ་འདྲར་གྱུར་པའི་མ་རྣམས་ཀྱི། །
ངང་ཚུལ་བསམ་ནས་སེམས་མཆོག་བསྐྱེད་པར་མཛོད། །༨

---

१ औघश्चतुर्विधः कामोघः; भवोघः, दृष्टि-ओघः, अविद्यौघश्च । सौतोऽनुकूलः प्रवाहावर्त्तः=औघार्थः । —अभि० समु० सत्यपरिच्छेद । पृ० ४७ । विश्वभारती संस्करण । १९५० ।

(अत:) निष्कोटि (=अनन्त) भव (सागर) में जन्म-जन्मान्तर से निरन्तर त्रिविध दु:खों से पीड़ित, इस तरह की अवस्था को प्राप्त (उन) माताओं (=जीवमात्र) की स्थिति की चिन्ता (=महाकरुणा) से (प्रेरित) परम चित्त (=बोधिचित्त) का उत्पाद करें ।। ८ ।।

ཤེར་ལམ་མེད་དུ་མི་རུང་བ།

གནས་ལུགས་རྟོགས་པའི་ཤེས་རབ་མི་ལྡན་ན། |
ངེས་འབྱུང་བྱང་ཆུབ་སེམས་ལ་གོམས་བྱས་ཀྱང་། |
སྲིད་པའི་རྩ་བ་གཅོད་པར་མི་ནུས་པས། |
དེ་ཕྱིར་རྟེན་འབྲེལ་རྟོགས་པའི་ཐབས་ལ་འབད། |༩

प्रज्ञा की अतिवार्यता—

निर्याण (चित्त) एवं बोधिचित्त में अभ्यस्त होने पर भी तत्त्व प्रतिपत्ति प्रज्ञा के अभाव में (इन मार्गों द्वारा) भवमूल (अविद्या) का उच्छेद नहीं हो पाता है । अतएव प्रतीत्यसमुत्पाद के बोधक उपायों के लिये प्रयत्न करना चाहिए ।। ९ ।।

ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་ལ་ཞུགས་ཚུལ།

གང་ཞིག་འཁོར་འདས་ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཅད་ཀྱི། |
རྒྱུ་འབྲས་ནམ་ཡང་བསླུ་བ་མེད་མཐོང་ཞིང་། |
དམིགས་པའི་གཏད་སོ་གང་ཡིན་ཀུན་ཞིག་པ། |
དེ་ནི་སངས་རྒྱས་དགྱེས་པའི་ལམ་ལ་ཞུགས། |༡༠

सम्यग्दृष्टि में प्रवेश—

जिसने संसार एवं निर्वाण (से सम्बन्धित) सभी धर्मों की कार्यकारण में विसंवादकता के अत्यन्त अभाव को देखा हो और (उसी

ज्ञान के समक्ष निमित्त ग्राहक विकल्पों के) आलम्बन का जो अधिष्ठान है; वे सर्वथा विशीर्ण हो जाता हो, तो उसे बुद्ध के प्रिय (जिन जननी प्रज्ञा) मार्ग में अवतरित माना जाता है ।। १० ।।

ལྟ་བའི་དཔྱད་པ་རྫོགས་ཚུལ།

སྣང་བ་རྟེན་འབྲེལ་བསླུ་བ་མེད་པ་དང་།
སྟོང་པ་ཁས་ལེན་བྲལ་བའི་གོ་བ་གཉིས།
ཇི་སྲིད་སོ་སོར་སྣང་བ་དེ་སྲིད་དུ།
ད་དུང་ཐུབ་པའི་དགོངས་པ་རྟོགས་པ་མེད།

दृष्टिपरीक्षण की सम्पूर्णता—

अविसंवादी प्रतीत्यसमुत्पाद की प्रतीति एवं प्रतिज्ञा (पक्ष) रहित शून्यता की प्रतीतियाँ जब तक भिन्न रूपेण होती रहती हैं, तब तक (साधक को यह समझ लेना चाहिए कि अभी हमें) मुनिमत का (यथावत्) बोध नहीं हुआ है ।। ११ ।।

ནམ་ཞིག་རེས་འཇོག་མེད་པར་ཅིག་ཅར་དུ།
རྟེན་འབྲེལ་མི་སླུར་མཐོང་བ་ཙམ་ཉིད་ནས།
ངེས་ཤེས་ཡུལ་གྱི་འཛིན་སྟངས་ཀུན་འཇིག་ན།
དེ་ཚེ་ལྟ་བའི་དཔྱད་པ་རྫོགས་པ་ལགས།

जब (उक्त दोनों प्रतीतियों में से किसी) एक को बिना छोड़े एक साथ (अर्थात्) प्रतीत्यसमुत्पाद की अविसंवादकता का दर्शन होते ही (निमित्त ग्राहक कल्पना के पूर्व) निश्चय की सभी विषय प्रतीतियाँ विनष्ट हो जाती हों तब (सम्यग्) दृष्टि की परीक्षा सम्पन्न होती है ।। १२ ।।

ཐལ་འགྱུར་ལུགས་ཀྱི་མཐའ་གཉིས་སེལ་ཚུལ།

གཞན་ཡང་སྣང་བས་ཡོད་མཐའ་སེལ་བ་དང་། །
སྟོང་པས་མེད་མཐའ་སེལ་ཞིང་སྟོང་པ་ཉིད། །
རྒྱུ་དང་འབྲས་བུར་འཆར་བའི་ཚུལ་ཤེས་ན། །
མཐའ་འཛིན་ལྟ་བས་འཕྲོག་པར་མི་འགྱུར་རོ། །༡༣

प्रासङ्गिकमत के उभयान्तनिराकरण—

अपि च, (प्रतीत्यसमुत्पाद की) प्रतीति के द्वारा शाश्वतान्त का तथा शून्यता के द्वारा उच्छेदान्त का निराकरण करते हुए (जब प्रतीत्यसमुत्पाद एवं) शून्यता को कार्य-कारण के रूप में जताने वाला नय का ज्ञान हो जाता है, तब अन्तग्राह दृष्टियों द्वारा (उस सम्यग्दृष्टि) का हरण नहीं होगा ।। १३।।

གདམས་པ་ཉམས་སུ་ལེན་པར་སྐུལ་བ།

དེ་ལྟར་ལམ་གྱི་གཙོ་བོ་རྣམ་གསུམ་གྱི། །
གནད་རྣམས་རང་གིས་ཇི་བཞིན་རྟོགས་པའི་ཚེ། །
དབེན་པ་བསྟེན་ཏེ་བརྩོན་འགྲུས་སྟོབས་བསྐྱེད་ནས། །
གཏན་གྱི་མདུན་མ་མྱུར་དུ་སྒྲུབས་ཤིག་བུ། །༡༤

अनुष्ठान के लिये प्रेरणा

वत्से ! इस प्रकार (जब) मार्ग के तीन प्रमुख (मुद्दों) का यथावत् ज्ञान अपने में (प्राप्त) हो जाता है, तब विविक्त (एकान्त स्थान, का) सेवन करते हुए प्रबल उद्यम करें और अविलम्ब अपने अन्तिम उद्देश्य को सिद्ध करें ।। १४।।

ཞེས་པ་འདི་ནི་མང་དུ་ཐོས་པའི་དགེ་སློང་བློ་བཟང་གྲགས་པའི་

དཔལ་གྱིས་ཚ་ཁོ་དཔོན་པོ་ངག་དབང་གྲགས་པ་ལ་གདམས་པའོ།།

ལམ་གཙོ་རྣམ་གསུམ་རྫོགས་སོ།།

इसे बहुश्रुत भिक्षु-श्री लो-जङ-डगस् पा (सुमतिकीर्ति) ने छ-वो-द्वोन्-पो ङग् वङ-डगस् पा'' के लिए अववाद के रूप में रचा हूँ।

।। प्रधान त्रिविध-मार्ग समाप्तम्।।

(यह ग्रन्थ उनकी प्रकीर्णक कृतियों के संग्रह 'ख' पुट में पृष्ठ २६१ में विद्यमान है।)